सन्दर्भ –

1. 'जनजाति क्या है? देशज क्या है? जगन्नाथ पाथी, देशज कौन, आदिवासी कौन? संपादक–तपन बोस, द अदर मीडिया, नई दिल्ली, पृ0 8–9।
2. भारत में आदिवासी प्रश्न, रंजीत साऊ, अखड़ा पत्रिका
3. देशज कौन, आदिवासी कौन? सम्पा0, तपन बोस द अदर मीडिया, नई दिल्ली पृ0 1 भूमिका से
4. जनजातियों के ठिकानों पर सभ्यता की पदचाप, अरूणेंद्र नाथ वर्मा, जनसत्ता रविवारीय, 27 मार्च, 2012
5. अरावली उद्घोष आदिवासी संस्मरण, सं0 वी0पी0 वर्मा 'पथिक', जून 2010, अंक 80, पृ0 88
6. जनसत्ता, संपादकीय 'जंगल के दावेदार', कमल नयन चौबे 20, मई, 2010
7. हम दलित, सम्पा0 जिम्मी सी0 डामी, जुलाई 2005, अंक 6, पृ0 14
8. डॉ0 अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 10, पृ0 22
9. इण्डिया टुडे, संपा0 प्रभु चावला, अंक 25, फरवरी 2009
10. इण्डिया टुडे, संपा0 प्रभु चावला, अंक 25, फरवरी 2009
11. हरिराम मीणा, अंडमान आदिवासियों को सभ्य बनाने की सलाह, सुबह के इंतजार (काव्य संग्रह), पृ0 41–42
12. आदिवासी लेखन, एक उभरती चेतना, रमणिका गुप्ता, पृ0 15–16
13. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, पृ0 31
14. रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ0 49

आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त नवीन चेतना एवं यथार्थ

पूनम सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

वर्तमान वैज्ञानिक युग में जबकि संसार द्रुत वेग से छोटे से छोटा होता जा रहा है, दूरागत पिछड़े अंचल भी इससे अछूते नहीं रह गए हैं। नव जागृति व नवनिर्माण की किरणें वहाँ छिटकने लगी हैं। सामाजिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में अन्धविश्वास पर आधारित रूढ़िग्रस्त परम्पराओं व मान्यताओं के प्रति अनास्था के साथ–साथ अपने अधिकारों के प्रति सचेतनता व शोषण के प्रति विद्रोह के लक्षण भी वहाँ दृष्टिगत हो रहे हैं जो कि शुभ हैं। उदाहरण के लिए 'परती परिकथा' में पूर्णिया जिले के परानपुर गाँव से बाहर गया हुआ जितेन्द्रनाथ दस–पन्द्रह वर्ष बाद जब पुनः लौटकर आता है तो देखता है पुराना सब कुछ समाप्त हो रहा है। नवीनता का तेजी से संक्रमण हो रहा है और न केवल परानपुर बल्कि "सभी गाँव टुट रहे हैं। गाँव के परिवार टूट रहे हैं, व्यक्ति टूट रहा है रोज–रोज, काँच के बर्तनों की तरह। निर्माण भी हो रहा है...नया गाँव, नए परिवार और नए लोग।"[1]

अर्थात् नए गाँव, नए परिवार और नए लोग, नवीन मानवीय मूल्यों व चेतना शक्ति को लेकर उभर रहे हैं, जहाँ सड़ी–गली जर्जर परम्पराओं के प्रति उपेक्षा का भाव है। सवर्णों एवं अछूतों के झगड़े अति प्राचीनकाल से चले आ रहे हैं। गाँधीजी ने जबसे अछूतों का उद्धार कर उन्हें मानवीय पद प्रदान किया है उनमें अपने अधिकारों के प्रति पर्याप्त सजगता आई है। उदाहरण के लिए 'लोक–परलोक' में देखते हैं, लोधे व चमारों में उच्च वर्ग के प्रति विक्षोभ का भाव विद्यमान है। विशेषकर नवयुवक पीढ़ी तो ब्राह्मण वर्ग को देवता मान स्वयं को उनसे नीचा दर्जा देने को किसी भी तरह तैयार नहीं है। बाजार में खड़े ललिता पंडित ने ज्योंहि पान की पीक थूकी तो तेजी से जाते हुए धनुआ

लोधे पर गिर पड़ी फिर क्या था वह कहने लगा– "देखिके थूकी करौ पंडित, आँखेऊँ चली गई हैं का ?"[2]

इस प्रकार शोषण के विरूद्ध निम्न शोषित वर्ग के सीने में दबी हुई घृणा और क्रोध की भावना आग की तरह सुलगती दिखाई देने लगी है। 'जल टूटता हुआ' में भी देखते हैं जमींदारी प्रथा समाप्त होने के पश्चात् बाबू महीप सिंह जैसे जमींदार भीतर से टूट रहे हैं किन्तु बाहर से अपना रौब दाब बनाए रखना चाहते हैं। जमींदार साहब के यहाँ से छोटी जाति के जगपतिया के बाप–दादों को चार बीघा जमीन मिली थी जिसके बदले दोनों भाई रात–दिन उनके यहाँ बेगार करते थे और जुल्म सहते थे। किन्तु अब धीरे–धीरे उनमें भय और सिहरन के स्थान पर दृढ़ निर्भिकता आती जा रही थी। एक दिन रमपतिया नौकरी की तलाश में बाहर चला जाता है और जगपतिया बीमार होने के कारण काम पर नहीं आता है तो बाबू साहब बहुत बिगड़ते हैं। जगपतिया को बुलाकर डाँटते, फटकारते हैं और गाली गलौंच करते हैं। जगपतिया उन्हें गाली देने से मना करता है व जूते की मार खाकर भी काम करने को तैयार नहीं होता है– "उपेक्षा की चाल चलता हुआ अपने घर की ओर लौट गया। न जाने उसके सीने में कितना क्रोध, कितनी घृणा दबी हुई आग की तरह सुलग रही थी, जिस पर मजबूरियों की परतें बिछी हुई थीं।"[3]

सतीश सम्पूर्ण सन्दर्भ में सोचता है– परम्परावादी पीढ़ी भी जाति–पाति, ऊँच–नीच की ढहती हुई दीवार को देख रही है। इस परिवर्तन को महसूस करते हुए 'काका' उपन्यास के हलवाई काका से कहता है– "जमाना पलट गया है। पहले गरीब–अमीर की बात इतनी नहीं थी, लोग दर्जा और जात देखते थे। वह मरजाद अब धूल में मिल गई। अब तो कोरी हो, चमार हो, एक कुल्हड़ में पीते हैं।"[4]

अब ग्रामीण अंचलों में अज्ञान, अशिक्षा व अन्धविश्वासों की समाप्ति होने लगी है। पहले पिछड़े ग्रामीण अंचलों में केवल झाड़–फूंक, टोने–टोटके, जड़ीबूटियों से ही बीमारों का ईलाज होता था व अंग्रेजी दवाइयों के पीने से भ्रष्ट होने का डर था। किन्तु अब वैज्ञानिक खोजों ने गाँवों में भी प्रवेश ले

लिया है। वहाँ भी अंग्रेजी दवाइयों का उपयोग होने लगा है। उदाहरण के लिए "सूरज किरन की छाँव' में आदिवासी गोंडों के गाँव में बंजारी के तापे (पिता) को बहुत तेज बुखार आया तो ओझा गुणियों की झाड़–फूंक व जड़ीबूटियों से कुछ भी फर्क नहीं पड़ा। अन्त में गाँव का गायता पीपरदेही गाँव से मिशनरी डॉक्टर को लाया जिसकी दवाइयों व सुईयों से दो दिन बाद बजारी के पिता ने आँख खोली व गायता को खूब असीसा।"[5]

अंचल विशेषों में शिक्षा के प्रचार से भूत–प्रेतों पर से विश्वास हटता जा रहा है। 'पानी के प्राचीर' में नीरू आंचलिक नवचेतना का प्रतीक है। बचपन से ही वह अन्याय का विरोधी रहा। दीन–हीनों के प्रति उसमें दया के भाव थे। दंगे, फसादों के वह विरूद्ध था तथा अन्धविश्वासों में उसे कतई विश्वास न था। नीरू का छोटा भाई केशव जब माँ से कहता है, सिवान वाले खेत के पास जो बरगद है उस पर नट रहता है तो नीरू उसे डपटता हुआ कहता है, भूत–प्रेतों की बात सुनते–सुनते तुम डरपोक होते जा रहे हो। "भूत–ऊत तो बेकार की शंकाएँ हैं।"[6] इसी प्रकार काम कुंठित गेन्दा को हिस्टीरिया का दौरा आने पर सब गाँव वालों ने कहा उसे गड़न्त पकड़े हुए है किन्तु गाँव का पढ़ा–लिखा नवयुवक मलिन्द इस सम्बन्ध में रमेश व नीरू से कहता है– "अरे भाई, इस गड़न्त–सड़न्त के चक्कर में क्या पड़ गए। लेकिन यह सब कपोल–कल्पना है।"[7]

वर्तमान समय में उत्साही पढ़े–लिखे नवयुवक गाँव की कुरीतियों को दूर करने में लगे हुए हैं। उनकी दृष्टि में उदारता का भाव विद्यमान है। उदाहरण के लिए 'दुखमोचन' के टमका कोइली गाँव में देखते हैं कुछ एक पुराण पन्थियों को छोड़ विधवा विवाह को कोई बुरा नहीं मानता। माया विधवा थी और कपिल विधुर, दुखमोचन ने उनकी इच्छानुसार आर्य समाजी ढंग से उनका विवाह करने की तैयारी की तो गाँव के मास्टर टेकनाथ व नित्या बाबू जैसे दकियानूसी लोगों ने विरोध प्रकट किया और कलियुग की दुहाई दी किन्तु अधिकांश लोगों ने यही कहा– "विधवा लड़की ने रंडुवा से सम्बन्ध कर लिया तो क्या बुरा किया ? इधर–उधर भटकती और भ्रष्ट होती तो गाँव कुल

का नाम डुबाती... वह अच्छा होता कि यह अच्छा हुआ?"[8]

वर्तमान समय में राजनीति ने भी हमारे जीवन के सभी पहलुओं को अत्यधिक प्रभावित किया है जिससे ग्रामीण आंचलिक जीवन भी अछूता नहीं है। अब लगभग सभी प्रमुख राजनीतिक पार्टियों का प्रवेश गाँवों में हो गया है। उदाहरण के लिए 'परती परिकथा' को देखते हैं– "इस बार सोलिड वोट प्राप्त करने के लिए हर पार्टी की शाखा प्रत्येक मास अपनी बैठक में महत्त्वपर्ण प्रस्ताव पास करती है।"[9] "राजनीतिक सरगर्मी के कारण परानपुर के लोग अब नामनेशन, मेजरौटी, पौलटीस, पौलीसी, दिमाकृषि (डेमोक्रेसी) शब्दों को समझने व उनका धड़ल्ले से प्रयोग भी करने लगे हैं।"[10]

'मैला आँचल' में पूर्णिया जिले के मेरीगंज ग्राम में कांग्रेस पार्टी का ही नहीं सोशलिस्ट पार्टी का भी जोर है। बालदेवजी गाँधीवादी नेता हैं और उनमें पर्याप्त जागरूकता है। गाँव में खुलने वाले मलेरिया सेंटर के मकान के लिए हर एक टोले में जाकर मदद मांगते हैं व हरगौरी जैसे दुष्टों के अपमानजनक व्यवहार को भी सहते हैं। राशन के कपड़े की पुर्जी बांटने का काम बालदेवजी को सौंपा गया था। कपड़े की माँग अधिक थी किन्तु कपड़े का कोटा कम मिला हुआ था। "पुरैनियाँ में मिनिस्टर साहब आने वाले थे। उनसे कपड़े का कोटा बढ़ाने की माँग करने हेतु जाने के लिए बालदेवजी ने सब स्त्री–पुरुषों को एकत्र किया। सब 'इन क्लिाब जिन्दाबाद' कालीमाय की जै' और 'गन्ही महतमा की जय' का नारा लगाते हुए जुलूस बनाकर सनियन्त्रित ढंग से पुरैनिया पहुँचे।"[11]

'मैला आँचल' में ही देखते हैं युगों से पीड़ित, दलित शोषित संथालों को सोशलिस्ट पार्टी की सभा की खबर जितना आलोकित करती है। उतना गाँव में अस्पताल खुलने की खबर भी नहीं। कॉमरेड सैनिक जी का भाषण समस्त ग्रामीण चाव से सुनते हैं।[12] "कालीचरण जब संथालों को समझाता है कि जमींदारी प्रथा अब समाप्त हो गई है। जमीन जोतने वालों की है, जो जोतेगा वही बोयेगा और खायेगा उससे उन्हें कोई बेदखल नहीं कर सकता तो उनके मस्तिष्क की उलझी हुई गुत्थी सुलझ जाती है।"[13] "डॉ0 प्रशान्त भी

उनसे यही बात कहते हैं। कालीचरण जैसे समाजवादी नेताओं के भाषण के द्वारा अब सब लोग अपने हकों को पहचानने लगे हैं और समझ गए हैं कि राजपूत और ब्राह्मण बात–बांत में उन पर लात और जूता चलाकर उनका शोषण नहीं कर सकते।"[14] नया तहसीलदार हरगौरी जी कि जमींदारी का समर्थक था और संथालों को उनकी जमीन से बेदखल करना चाहता था वह ऐलान करता है– "बस, एक सौ रुपये बीघा सलामी देकर कोई भी रैयत जमीन की बन्दोबस्ती के लिए दर्खास्त दे सकता है।"[15]

तो जमीन के लिए संघर्ष करने हेतु गाँव में नई दलबन्दी हो जाती है– "जिन लोगों की जमीन नीलाम हुई हैं, दर्खास्तें खारिज हुई हैं, वे एक तरफ हैं। जिन्होंने नई बन्दोबस्ती ली है अथवा जमींदार से माँग ली है, सुपुर्दी लिख कर दे दी है या जो जमीन बन्दोबस्त लेना चाहते हैं, वे सभी दूसरी तरफ हैं।"[16]

इस विद्रोह का प्रभाव मेरीगंज गाँव के निर्धन मजदूरों के टोलों पर भी पड़ता है। वे खेलावन यादव और तहसीलदार हरगौरी सिंह का काम करना बन्द कर देते हैं। स्वयं हरगौरी विश्वनाथ बाबू से कहता है– "कल से ही रामकिरपाल काका के गुहाल में गाय मरी पड़ी है। चमार लोगों ने उठाने से साफ इंकार कर दिया है।..... राजपूत टोले के लोगों को देखिए, दाढ़ी कितनी बड़ी–बड़ी हो गई है। नाइयों ने काम करना बन्द कर दिया है।"[17]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गाँवों में राजनीतिक सरगर्मी के कारण पिछड़ी जातियों में अपने अधिकारों के प्रति पर्याप्त जागरूकता व सजगता आई है। हम देखते हैं वर्तमान समय में सब कुछ क्षम्य एवं जायज मानने वाले मौका परस्त स्वार्थी चाणक्य नहीं गाँधी हैं। उदाहरण के लिए 'जल टूटता हुआ' में पंचायती चुनाव जीतने के लिए अनेक षड़यंत्र रचने वाले दीनदयाल से बदला लेने के लिए रामकुमार चाणक्य व कृष्ण की कूटनीति का समर्थन करते हुए दीनदयाल की बेटी शारदा को बदनाम करने की बात कहता है तो सतीश पर इसकी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। वह राजकुमार की चाणक्य नीति का विरोध करता हुआ कहता है– "मगर हमार अधिक निकट

तो गाँधी का उदाहरण है जिन्होंने साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर बल दिया है। माफ करना कुमार मैं, आदर्श को राजनीति से अलग करके नहीं देख पाता..... शारदा जैसी लड़की की इज्जत को अपनी विजय का साधन बनाना अनीति है, मुझे नामंजूर है।"[18]

गन्दी राजनीति का खेल खेलने वाले बाबू महीपसिंह एवं दीनदयाल जैसे गंदे जानवरों के लिए सतीश आक्रोश भरे स्वर में कहता है– "अब इन्हें बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। इनका राज बदलना ही होगा।"[19]

आंचलिक जीवन में राजनीतिक सरगर्मी के कारण अपने अधिकारों के प्रति पर्याप्त सचेतनता आई है। अब वे अपने धार्मिक, सामाजिक उत्सवों के समान राष्ट्रीय पर्व भी हर्षोल्लास से मनाने लगे हैं। उदाहरण के लिए रामदरश मिश्र कृत 'जल टूटता हुआ' में साधनों के अभाव में भी भाटपार के प्राइमरी स्कूल में आजादी की वर्षगाँठ मनाई जाती है। उस दिन निर्धन छात्र सिर पर टोपी व धुले हुए कपड़े पहनकर हँसी–खुशी स्कूल आते हैं। जिला बोर्ड के सदस्य बाबू महीपसिंह को झण्डा रोहण के लिए बुलाया जाता है। बालक उनके सम्मान में स्वागत गान गाते हैं और भारत माता की जै बोलते हैं। सरकार की ओर से स्कूल में लड्ड भी बाँटे जाते हैं।

'सूरज किरक की छाँव' में भी स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् आदिवासी गोंड बड़े–बड़े जलसों में भाग लेते हैं जिसमें जवाहरलाल नेहरू जैसे नेता पधारते हैं और अपने लोकगीतों व लोक नृत्यों के द्वारा भावात्मक एकता का प्रसार करते हैं।"[20]

आंचलिक उपन्यासों का लक्ष्य प्रारम्भ से ही 'शुद्ध मानवीय धर्म' को आधारभूमि मानकर चलने वाला रहा है। आंचलिक उपन्यासों का उद्देश्य रहा है कि आसपास का मूर्त समाज धीरे–धीरे विकसित होकर अन्तर्राष्ट्रीय बने।

सन्दर्भ –

1. फणीश्वर नाथ 'रेणु', परती परिकथा, पृ0 16
2. उदय शंकर भट्ट, लोक–परलोक, पृ0 8

3. रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृ0 14
4. वही, पृ0 14
5. राजेन्द्र अवस्थी, सूरज किरन की छाँव, पृ0 16
6. रामदरश मिश्र, पानी के प्राचीर, पृ0 39
7. वही, पृ0 10
8. नागार्जुन, दुखमोचन, पृ0 101
9. फणीश्वर नाथ 'रेणु', परती परिकथा, पृ0 20
10. वही, पृ0 21
11. फणीश्वर नाथ 'रेणु', मैला आँचल, पृ0 111–115
12. वही, पृ0 130–34
13. वही, पृ0 130
14. वही, पृ0 194
15. वही, पृ0 215
16. फणीश्वर नाथ 'रेणु', मैला आँचल, पृ0 222
17. वही, पृ0 223
18. रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृ0 151
19. वही, पृ0 157
20. रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृ0 5